अर्थशास्त्र
समाजशास्त्र के साथ प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य के सदुपयोग
सुरक्षात्मक नीति पक्ष का अध्ययन

परिभाषा :-

अर्थ = मूल्य । मूल्य = मौलिकता । मौलिकता = स्वभाव । शास्त्र = शासन = उपयोगिता एवं प्रयोजनीयता = सामरस्यता = पूर्णता के अर्थ में नित्य समाधान = अर्थ की सुरक्षा सदुपयोगिता ।

"प्रत्येक मनुष्य उपयोगिता व प्रयोजनीयता से समीकृत है ।"

आधार :-

1. मूल पूंजी = निपुणता, कुशलता और पांडित्य ।
2. प्राकृतिक ऐश्वर्य (मनुष्येतर प्रकृति) का मूल्य शून्य है ।
3. वस्तुओं के संपत्तिकरण के स्थान पर साधनीकरण ।
4. मूल पूंजी का नियोजन = श्रम व सेवा ।
5. मूल्य और मूल्यांकन के आधार पर श्रम= नियोजन एवं विनिमय ।
6. मनुष्य अक्षय शक्ति संपन्न होने के कारण अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग करने योग्य है ।

अनिवार्यता :-

1. प्रत्येक मनुष्य तन-मन एवं धनात्मक अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा चाहता है ।
2. प्रत्येक मनुष्य बौद्धिक रूप में समाधान, भौतिक रूप में समृद्धि, व्यवहार व समाज रूप में अभय एवं सह-अस्तित्व चाहता है ।

प्रयोजन :-

1. मानवीयता में निहित अमानवीयता के भय का मानवीयता की सीमा में संपूर्ण अर्थ का सार्थक होना ।
2. मानवीयता की सीमा में संपूर्ण अर्थ का सार्थक होना ।
3. मानव के लिए मानवीयता ही एक मात्र शरण है और स्वत्व है क्योंकि मानवीयता ही मानव के स्वभाव, गति एवं गुणों को प्रकाशित करती है ।

प्रत्येक मनुष्य में तन-मन एवं धन के रूप में अर्थ का होना पाया जाता है । धनात्मक अर्थ का तात्पर्य उपयोगिता व कला मूल्य संपन्न वस्तुओं से है जो चैतन्य शक्तियों का वैभव है । चैतन्य शक्तियाँ पूर्णतः परिमार्जित होने पर अर्थात मानवीय सचेतनापूर्ण शिक्षा संस्कारों से संपन्न होने पर निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य के रूप से ख्यात होता है । इसी सत्यता का चैतन्य इकाई की मूल पूंजी के रूप में वह स्पष्ट होता है । यही जीवन का स्वत्व है । स्वत्व को उपयोग करने की अधिकार एवं स्वतंत्रता होती है । इनमें बाधाएँ उत्पन्न करने वाला मनुष्य असामाजिक एवं अन्यायी होता है । मनुष्य जन्म से ही न्याय का चाहक होने के कारण अन्याय का विरोध करता है । फलतः संघर्ष होता है । वर्तमान तक बीता हुआ इतिहास भी इसी का साक्षी है । मनुष्य अपनी मूल पूंजी को जीवन मूल्य के अर्थ में ही प्रायोजित करने के लिए नियोजित करता है । नियोजन ही परावर्तन, प्रयोजन ही प्रत्यावर्तन है । प्रत्यावर्तनपूर्वक, सुख, शांति, संतोष एवं आनन्दमय वैभव तथा अनुभूति होती है, यही मूल पूंजी के रूप में परावर्तित होकर समाधान न्याय एवं नियमपूर्वक विचार, व्यवहार, प्रयोग एवं व्यवसाय में प्रकाशित होता है । अनुभूति का प्रकाशन परावर्तन काल में प्रमाण के नाम से ज्ञात होता है । जीवन का संपूर्ण क्रिया कलाप व्यवसाय व्यवहार, विचार व अनुभूति ही है । इसमें से प्रथम दो सामाजिकता पूर्वक जीवन मूल्य के अर्थ में एवं अंतिम दो प्रामाणिकता एवं सिद्धांत के रूप में स्पष्ट होती है । यही अंतःकरण का स्वत्व है । विचार समाधान में, अनुभूति प्रामाणिकता में स्पष्ट है और इसी में वह अति संतृप्त है । अस्तु मूल पूंजी ही तन के द्वारा परिवर्तित होकर व्यवसाय व व्यवहार के रूप में प्रकाशित होती है । समाधान व प्रामाणिकता पूर्ण जीवन स्वत्व से संबद्ध होने के लिए तन-मन एवं धनात्मक अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा की अपरिहार्यता सिद्ध होती है । अर्थ की सदुपयोगात्मक नीति ही धर्म समाज नीति एवं सुरक्षात्मक नीति ही राज्यनीति है । सुरक्षा के बिना सदुपयोग, सदुपयोग के बिना सुरक्षा सिद्ध नहीं होती । यही अन्योन्यतापूर्वक या पूरक रूप में है । यही नैतिकता का ध्रुव है । इन्हीं ध्रुवों के आधार पर व्यवस्था की स्थिति स्पष्ट एवं समीकृत होती है । जीवन मूल्य ही जीवन धर्म रूप में समीकृत है इस प्रकार सामाजिकता को पाने के लिए मानवीय अर्थ चिंतन एवं उसकी व्यवस्था एक अविभाज्य आवश्यकता है । सामाजिकता के बिना मानव व्यवहार गति में मनुष्य की दृढ़ता एवं गुणात्मकता सिद्ध नहीं होती । अस्तु जीवन मूल्य के अर्थ में ही अर्थ चिंतन सफल होता है । अर्थशास्त्र केवल धन का विज्ञान न होकर तन-मन एवं धन का विज्ञान सिद्ध होता है ।

मनुष्येतर संपूर्ण प्रकृति मनुष्य के लिए व्यवसायिक क्षेत्र है । मनुष्येतर प्रकृति का तात्पर्य जीवन, वनस्पति, पदार्थावस्था एवं उनके

पृष्ठ-3

रूपान्तरण से है । संपूर्ण प्रकृति अपने स्वभाव मूल्यों सहित प्रकाशरत है । इन्हीं स्वभाव मूल्यों पर मनुष्य उपयोगिता तथा कला मूल्यों के लिए अपनी निपुणता एवं कुशलता को नियोजित करता है, फलतः शरीर निर्वाह एवं व्यवहारगति के लिए सही साधन रूप प्रयोजित होता है । संपूर्ण साधन आकांक्षाद्वय की सीमा में उपादेई है। सामान्य आकांक्षाएँ आहार, आवास एवं अलंकार के प्रयोजन, महत्व-आकांक्षाओं से संबंधित वस्तुएँ दूर-गमन, दूर-श्रवण एवं दूर दर्शन से संबंधित है । ये ही सब व्यवहार गति के लिए साधन है । इससे निश्चय होता है कि व्यवसायिक साधन से प्रधान वस्तु व्यवहार है । व्यवहार सामाजिकता की सीमा में आश्वस्त एवं विश्वस्त होता है ।

अर्थ की अपव्ययता ही असामाजिकता के अर्थ में स्पष्ट होता है । अपव्यय का तात्पर्य ह्रास से है । मानवीयता का ह्रास पाशवीयता या राक्षसीयता के रूप में द्रष्टव्य है । पाशवीयता या राक्षसीयता हिंसक एवं अहिंसक की सीमा में परिलक्षित होता है । मात्र अहिंसकता ही सामाजिकता का त्राण या प्राण नहीं होता । हिंसकता सामाजिकता नहीं है, इसके लिए अनेक साक्ष्य ऐतिहासिक रूप में स्पष्ट हो चुके हैं । सामाजिकता की अर्थ निरूपत्ति के लिए मानवीयता ही मानव का त्राण व प्राण है । यही व्यवहार गति है, ऐसी व्यवहार गति में प्रधानतः शिक्षा एवं संस्कार ही प्रत्येक मनुष्य में आचरणकारी और व्यवस्थाकारी तत्वों को प्रबोधित एवं प्रस्थापित करता है जो अवधारणा के रूप में स्थिति हो जाता है ।

मनुष्य अक्षय शक्ति संपन्न होने के कारण अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग करता है अथवा करने की संभावना है । इसी को सर्व सुलभ बना देना शिक्षा का गौरव है । अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग का अवसर सभी के लिए समान है । प्रत्येक मनुष्य में चैतन्य रूप तथा उसकी शक्तियाँ समान है । संस्कारों की विविधता है । इसी विविधता वश मनुष्य कार्य-कलाप एवं व्यवहार वैविध्यता को सिद्ध करता है । संदिग्ध संस्कार के मूल में अनेक जाति, धर्म एवं कर्म संस्कार ही सिद्ध होता है, इसके स्थान पर मानव जाति, मानव धर्म एवं मानव कर्मवादी शिक्षा से ही मानवीय भावनाएँ स्थापित होती हैं । फलतः अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा होता है । मनुष्य में अक्षय शक्ति को कई प्रकार से देखा जाता है, उनमें से एक इस प्रकार है - "जो जितना जान पाता है वह उतना चाह नहीं पाता, जो जितना चाह पाता है उतना कर नहीं पाता, जो जितना कर पाता है वह उतना भोग नहीं पाता ।" शरीर की सीमा में भोग होता है । शरीर की क्षमता से अधिक भोग संभव नहीं है । यद्यपि भोगों के साथ विचार रहता ही है, फिर भी इंद्रिय क्षमता ही उसकी अर्थ सीमा हो जाती है, क्योंकि जितना विचार होता है उतना भोग नहीं होता ।

पृष्ठ - 4

जैसे आहार को हम सर्वोत्तम भोग मानकर उसे ही निरंतरता देने का प्रयास करें तो वह संभव नहीं है । इसी प्रकार सभी भोगों को की स्थिति है । भोग सीमा से अधिक विचार का होना स्पष्ट है । इस प्रकार चैतन्य इकाई की प्रेरणा मेधस द्वारा अथवा मेधस में संकेतित होना तथा शरीर का तदनुसार कार्य कलाप में आरूढ होना देखा जाता है । इसी के फलस्वरूप सफलता/असफलता, उचित, अनुचित, आवश्यक-अनावश्यकएवं उपयोग व प्रयोजन के अर्थ में पुनर्विचार होता है । इन्हीं कार्य व्यवहार एवं व्यापार से अवधारणाओं का ऋण -धनात्मक होना पाया जाता है । यही ऋणात्मक अथवा धनात्मक गुणात्मक परिवर्तन है । प्रत्येक मनुष्य में अवस्थित अवधारणा (संस्कार) वातावरण के देय और अध्ययन के योगफल में चैतन्य शक्तियों का परावर्तित एवं परिमार्जित होना पाया जाता है । मनुष्य कृत वातावरण ही मनुष्य के विशेष विकृत या सुकृत होने के लिए प्रेरणा है । यही प्रकाशन, प्रचार, प्रदर्शन, संस्कार और व्यवस्था पद्धति है । इन सबकी गुणवत्ता की अविकृत शक्ति केवल शिक्षा की मौलिकता है इस प्रकार अर्थ चिंतन शिक्षा का एक अविभाज्य अंग है । अंग का तात्पर्य जीवन, जीवन प्रकाशन प्रयोग और प्रयोजन संबंधी तत्वों से है । जीवन को भुलाकर शिक्षा की कोई सामाजिक उपलब्धि नहीं होती । जीवन के ज्ञापन में अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा की अनिवार्य स्थिति सहज सिद्ध होती है ।

मनुष्य द्वारा भी रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन कार्य संपन्न होता है । यह परिवर्तन अन्य प्रकृति की क्रम साध्यता की अपेक्षा अत्यधिक द्रुत गति से होता हुआ देखा जाता है । इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्येतर प्रकृति को परिभाषित करने का अधिकार मनुष्य में समाहित है । परिमाणीकरण क्षमता को मनुष्येतर प्रकृति के साथ मनुष्य ही प्रकाशित करता है । परिमाणीयता मानव जीवन को अक्षय शक्ति की आंशिकता में ही संपन्न होता है । प्रामाणिकता मूल्यों के अर्थ में सार्थक होती है । परिमाण कोई मूल्य नहीं है या परिमाण किसी मूल्य को स्पष्ट नहीं करता । प्रत्येक परिमाण रूप, गुण का संयुक्त रूप होता है । स्वभाव धर्म ही मूल्यों का आधार है जो परिमाणवादी चेतना की सीमा में सार्थक नहीं होता है । स्वभाव धर्म ही मूल्यों का आधार है, जो परिमाणवादी चेतना की सीमा में सार्थक नहीं होता । मनुष्य के संदर्भ में मनुष्य का व्यवहारिक दायित्व समान रूप में है । यही दायित्व जीवन-मूल्य के अर्थ में अभिहित होता है । साथ ही स्थापित एवं शिष्ट मूल्य

- पृष्ठ 5

निर्वाह एवं आचरण से ही सफल होता है अन्यथा असफल होता है। इस प्रकार ज्ञानावस्था के मनुष्य में अक्षय शक्तियों का होना उसका परिमार्जनपूर्वक मानवीयता के अर्थ में प्रकाशित होना फलता अधिक उत्पादन कम उपभोग सिद्ध होना देखा जा रहा है। अभी तक संपूर्ण अपव्यय पर मानव नियंत्रण नहीं कर पाया है। इसका साक्ष्य युद्ध और अपराधों में प्रयुक्त होने वाली शक्ति और साधन है। इतने वृहद रूप में अपव्यय होते हुए भी पीढ़ी से पीढ़ी में परिवर्तित साधन अधिकाधिक होता हुआ देखा जाता है। यह भी मनुष्य की अक्षय शक्ति का साक्षी है।

अस्तु, उक्त तथ्यों के आधार पर हम मूल्य और मूल्यांकन वादी पद्धति से अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा का निर्णय कर पायेंगे और व्यवहार रूप दे पायेंगे।

(1) जीवन-मूल्य के अर्थ में स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य एवं व्यवसाय मूल्य समीकृत होता है, फलतः उसका संरक्षण एवं सदुपयोग ध्रुवीकृत होता है। इसे शैक्षणिक रूप देने के लिये हमें समृद्ध पाठ का निर्माण करना होगा।

(2) जीवन-मूल्य के अर्थ में ही व्यक्ति में मानवीयता पूर्ण आचरण, परिवार में मानवीयता-पूर्ण संस्कृति मानव समाज में सभ्यता स्थापित एवं प्रकाशित होगी।

उक्त ऐतिहासिक गुणात्मकता को व्यवहार रूप देने के लिये व्यवहार चित्र इस प्रकार होगा।

व्यवहारिक मूल्य चित्र

जीवन + गुणात्मक विकास = क्रिया-पूर्णता + आचरण-पूर्णता = सतर्कता व सजगता = जीवन मूल्य = सुख, शांति संतोष एवं आनन्द = समाधान + प्रमाणिकता = जीवन परावर्तन = समाज मूल्य = मानव मूल्य = मूल्यांकन क्षमता = प्रत्यावर्तन = जीवन मूल्य।

स्थापित मूल्य + शिष्ट मूल्य = मानव मूल्य की धारक वाहक क्षमता = पांडित्य = न्याय सुलभता + विनिमय सुलभता।

स्थापित मूल्य = कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य ममता, सम्मान एवं स्नेह।

शिष्ट मूल्य = सौम्यता, सरलता पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता उदारता, अरहस्यता एवं निष्ठा।

पृष्ठ 6/-

व्यवसाय मूल्य = उपयोगिता + कला मूल्य = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन = उत्पादन मूल्य = वस्तु मूल्य + विनिमय सुलभ श्रम + न्याय सुलभ श्रम = विक्रय क्रय मूल्य = विनिमय मूल्य = मूल्यांकन = प्रत्यावर्तन = समाज गति = व्यवहार व्यवस्था मूल्य = चरित्र = सार्वभौमता ।

मूल्य ग्राही प्रदाई अनिवार्यता = स्थापित संबंध = स्थापित मूल्य + शिष्ट मूल्य = व्यवहार संबंध = संस्कृति + सभ्यता संबंध = मूल्य + मूल्यांकन क्षमता = विशालता = सार्वभौमता = प्रबुद्धता = निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य = मानव की मूल पूंजी = मानवीयता, अतिमानवीयता = क्रांतिकारिता + जनवादिता + उत्पादवीयता = नित्य शुभ ।